*Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*
*Vol. 16, Issue No. 9, June-2019, ISSN 2230-7540*

# पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी - एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

**Amit Kumar[1]* Dr. Nidhi Raizada[2]**

[1] Research Student, Department of History, Km. Mayawati Government Girls P.G. College, Badalpur, Uttar Pradesh

[2] Associate Professor, Department of History, Km. Mayawati Government Girls P.G. College, Badalpur, Uttar Pradesh

***सार –*** ***लोकतन्त्र मानव गरिमा, व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं समानता, राजनीतिक निर्णयों में जन भागीदारी के कारण शासन का श्रेष्ठतम रूप माना जाता है। लोकतन्त्र राजनीतिक परिस्थिति या शासन चलाने की पद्वति मात्र नहीं हैं अपितु यह सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थिति भी है। लोकतंत्र एक विशेष प्रकार का शासन, एक विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था, एक विशेष मनोवृत्ति एवं जीवन जीने की विशिष्ट पद्वति भी है। लोकतंत्र का सार जनता की सहभागिता एवं नियंत्रण में निहित है। लोकतंत्र का आधार शासन में जनसहभागिता के साथ ही शासन का निम्न स्तर तक विकेन्द्रीकरण है, उसी भावना का साकार स्वरूप पंचायतीराज व्यवस्था है। गांधीजी ने अपने अन्तिम सार्वजनिक लेख वसीयतनामे में लिखा है कि "सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे 10-20 आदमी नहीं चला सकते, वह तो नीचे से गाँव के हर आदमी द्वारा चलाई जानी चाहिए।"***

----------X----------

**पंचायती राज का अर्थः-**

प्राचीनकाल में पंचायतों या अन्य प्रकार के स्थानीय शासनों को राज्य सरकार या प्रशासन का एक अभिकरण मात्र माना जाता था, किन्तु पंचायती राज को वर्तमान भारत में लोकतंत्र के विकास के लिये एक प्रक्रिया के रूप में अपनाया जाना अत्यन्त आवश्यक सा हो गया।[1] पंचायती राज का अर्थ एक शासन पद्धति है, यह गाँव पंचायतों का जाल सा है। ऊपर से नीचे देखें तो यह पंचायत से निकल रहा एक अंग है जो बढ़कर राष्ट्रव्यापी हो रहा है। इसका निर्णय सार्वलौकिक या कम से कम सर्वसम्मत होता है। इसमें राजनीतिक शास्त्रार्थ की गुंजाइश नहीं है। पंचायती राज के नये सिद्धान्त के रूप में माना गया है, इसका अर्थ परस्पर विचार-विमर्श के आधार पर शासन स्वीकृति व सर्वसम्मति है।[2] पंचायती राज निःसंकोच प्रशासन की वह परिवर्तित पद्धति होगी, जिससे प्रशासनिक अभिकरणों का विकेंद्रीकरण होगा, शासन के विभिन्न अभिकरणों की कार्य-पद्धतियों में सामंजस्य होगा, प्रशासन और अधिक उत्तरदायी बनेगा और ग्रामीण जनता को शासन में भाग लेने का अवसर मिलेगा।[3] पंचायती राज प्रशिक्षण देकर नेतृत्व तैयार करने तक ही सीमित नहीं माना जा सकता और न ही सामुदायिक विकास में एक सहायक मात्र, बल्कि सर्वोच्च कार्यक्रम के एक मुख्य अंग के रूप में हमारे सामने आता है। इसका मूल्यांकन और आगे बढ़कर राजनीतिक क्रान्ति के रूप में किया जा सकता है। जो लोगों के लिये महत्वपूर्ण अर्थ रखती है।[4] श्री जय प्रकाश नारायण तो इसे वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का एक अंग ही नहीं बल्कि उसका अग्रदूत मानते है।[5] एस0 के0 डे0 ने पंचायती राज को आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक लोकतंत्र हेतु एक बहुउद्देशीय संस्था माना है।[6]

**पंचायती राज के उद्देश्यः-**

स्वतंत्रता के पश्चात् परम्परागत प्राचीन संस्था, पंचायत को पुनर्गठित करके उसमें नवीन विचारों का सूत्रपात किया गया और पंचायती राज संस्थाओं से यह प्रत्याशा की गयी थी कि इससे ग्रामीणों में विकास कार्यों के लिये उत्साह आयेगा तथा राजनीतिक एवं विकासात्मक चेतना के द्वारा ग्रामीण सक्रिय और जागरूक होगें। सक्रियता की इस प्रक्रिया के कारण लोगों में परिव्याप्त उदासीनता समाप्त होगी तथा वे जन कल्याण में लगेंगे। उन्हें अपनी समस्याओं का आभास

होगा और वे उसके समाधान के लिये प्रयत्नशील होंगे। बिना उत्तरदायित्व एवं अधिकारों के विकास कार्यो में प्रगति नहीं हो सकती। किसी समुदाय की प्रगति सही अर्थो में तभी हो सकती है जब वह समुदाय अपनी समस्याओं को समझे, अपनी जिम्मेदारियों को महसूस करें तथा स्थानीय शासन पर सतत् बौद्धिक सतर्कता बनाये रखें।[7] स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में पंचायती राज का प्रारम्भ तीन प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया गया, जो निम्नलिखित हैं:-

1. पंचायती राज का वास्तविक एवं तात्कालिक उद्देश्य सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का प्रसार एवं उन्हें क्रियान्वित करने का रहा है। पंचायती राज एक तरफ अपने में लोगों की पहल एवं उनकी वास्तविक सहभागिता का समाविष्ट करता है तो दूसरी तरफ सरकारी वित्तीय सहायता तकनीकी सुविधा और पर्यवेक्षण से इसे संयुक्त करता है।[8]

2. पंचायती राज का दूसरा उद्देश्य यह है कि, इसके द्वारा लोगों को जागरूक करके जाति, वर्ण, धर्म धौर धन के आधार पर निर्मित होने वाले नेतृत्व को परिवर्तित किया जाय। पंचायतीराज की स्थापना से यह प्रत्याशा की गयी थी कि चुनावों की अवधि में पूर्व उपस्थित नेतृत्व के स्थान पर नया नेतृत्व उभरकर सामने आयेगा।[9]

3. पंचायती राज का तीसरा प्रमुख उद्देश्य, ऐसी परम्परागत स्वायत्तशासी संस्थाओं की स्थापना करना है, जिससे कि वह सच्चे लोकतंत्र का प्रतीक बने।[10]

लोकतंत्र की किसी भी सच्ची व्यवस्था का आधार स्थानीय स्वशासन ही है क्योंकि जब तक लोकतंत्र का इस नीचे के स्तर के आधार पर निर्माण नहीं किया जायेगा, तब तक शिखर पर वह सफल नहीं होगा। एस0 के0 डे0 की भावना के अनुसार, "पंचायती राज सरकार की एक इकाई होकर जीवन बिताने का एक ढंग हो जायेगा और यह इकाई सरकार के प्रति एक नयी दृष्टि का सूचक होगी" यह हमारी जनता को ग्राम सभा से लेकर लोक सभा तक एक कड़ी के रूप में पिरो देगा।[11] के0 एस0 वी0 रमन ने पंचायती राज के बारे में तीन विभिन्न सिद्धान्त बताये, जो अधोलिखित है[12]-

1. पंचायती राज व्यक्ति और समाज के बीच की विशेष समस्याओं के प्रबन्ध द्वारा अच्छे सम्बन्ध स्थापित करता है, व्यक्ति को समाज में भाग लेने की भावना का विकास करता है, ग्रामीण लोगों को राजनीतिक शिक्षा देता है और देश की नागरिकता में उपयोगी बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करता है।

2. पंचायती राज सरकार के लिये स्वयं शासित इकाई के रूप में कार्य कर सके। इसकी स्थापना इसी उद्देश्य से है कि लोक कल्याण के लिये लोक प्रशासन की मशीनरी को उपयोगी बनाया जा सके, ताकि विस्तृत रूप से फैले हुये कार्यों को लोक कल्याणकारी सरकार नियोजित अर्थव्यवस्था के द्वारा पूरा कर सके।

3. पंचायतीराज लोगों का ध्यान प्रशासन के स्वामियों से हटाने के लिये राजनैतिक पद्धति के रूप में कार्य कर सके। इसका वास्तविक उद्देश्य जनता को अधिक शक्ति का हस्तानान्तरण नहीं है। अपितु राजनीतिक पार्टियों के प्रभाव का गाँव तक विकास करना है, जो कुछ पाटियाँ खो चुकी है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह तथ्य प्रकाश में आता है कि पंचायतीराज की स्थापना के समय उसका उद्देश्य विकास की एक एजेन्सी की तरह समाज का चहुँमुखी विकास करना था। वस्तुतः ग्रामीण जनता में जागरूकता, चेतना, सहभागिता उनकी समस्याओं का निरूपण तथा सर्वांगीण विकास ही पंचायती राज का प्रमुख उद्देश्य है।

**महिलाओं के राजनीतिक जागरण का इतिहासः -**

प्राचीन ग्रन्थों में स्त्री के स्वरूप विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री की सामाजिक भूमिका भिन्न-भिन्न युगों की वास्तविकताओं के अनुरूप रही है। भारत में अनन्तकाल से सैद्धान्तिक रूप में नारी को नवाजा गया है और उसका आदर हुआ है। हिन्दू आदर्श के अनुसार स्त्रियाँ अद्र्धांगिनी कही गयी है। हिन्दू समाज में मातृत्व का आदर है। सर्वनियन्ता भगवान की शक्तियों का लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, काली आदि रूपों में ही वर्णन किया गया है। इस प्रकार नारी शक्ति धन और ज्ञान का प्रतीक मानी गयी है। वह हमारी राष्ट्रीयता (भारत माता) की प्रतीक है, परन्तु यह सब होते हुए भी व्यवहारिक रूप में भारत में नारी की स्थिति विरोधाभास पूर्ण रही हैं। परम्परा से नारी को शक्ति का रूप माना गया है किन्तु आम बोलचाल में 'अबला' कहा जाता है। हिन्दू समाज में नारी की स्थिति परिवर्तनशील रही है।[13] समाज में उनके उत्थान को विभिन्न रूपों में निरूपित किया गया है तथा सभ्यता के विभिन्न चरणों में उनकी स्थिति के बारे में परस्पर विरोधी विचार प्रचलित हैं।[14] एक ओर उसे दास अथवा बोझ ढोने वाले पशु जिसकी नियति ही कठिन परिश्रम करना है- से ज़रा ही अच्छी मानी गयी है। उसे पशु

के समान बेचा अथवा उसके साथ पशुवत् व्यवहार किये जाने के योग्य माना गया है।[15] दूसरी ओर जो लोग जातियों की उत्पत्ति मातृ प्रधान परिवार को मानते है वे स्त्री को निर्विवादित सपरिवार की मालकिन मानते है।[16] वस्तुतः यह दोनों ही विचार वास्तविकता से बहुत परे है।[17] स्त्री के समाज के साथ सम्बन्धों में इतनी विभिन्नतायें हैं कि कोई भी एक सामान्य विचार सामने नहीं आ पाता। वास्तव में उसकी उपयोगिता पारिवारिक जीवन में साधन सम्पन्नता, ताज़गी प्रदान करने वाली तथा बच्चों की प्रेमपूर्वक देखभाल करने वाली के रूप में उसके पति के लिये वरदान स्वरूप रही है और आज भी है। यही विशेषतायें सभ्यता के विभिन्न चरणों में समाज में उसका स्थान निर्धारित करती है। पुरुष की पूर्णता के लिये नारी का अध्ययन आवश्यक है। किन्तु नारी अध्ययन के लिये पुरुष का अध्ययन आवश्यक नहीं है।[18] वास्तव में स्त्री के बारे में हर समाज, देश, सामाजिक स्तर, वातावरण, समय तथा जनसंख्या समूह में पुरुष की स्थिति के सन्दर्भ में ही कहा गया है।[19]

जब कोई ऐसी धारणा बनाता है कि समाज में नारी का अपना अलग स्थान हैं तो ऐसा विचार व्यक्त करते समय वह पुरुष एवं नारी के बीच पाये जाने वाले अन्तरों की तुलना कर रहा होता है। किन्तु ऐसा करना नारी के अध्ययन के कार्य को सुगम नहीं बनाता क्योंकि सम्भवतः स्त्रियों के विषय में कुछ कह पाने से पूर्व लोगों में पायी जाने वाली लैंगिक समानता के अलावा उनमें पायी जाने वाली विभिन्नताओं पर भी विचार आवश्यक है।[20] प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक समय में पुत्री का जन्म स्वागत योग्य नहीं माना जाता था, किन्तु इससे माता-पिता भयभीत भी नहीं होते थे। छोटी आयु में विवाह का नियम नहीं था। राजपरिवारों की पुत्रियों को प्रशासनिक तथा सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता था। वे लड़कों के समान ही शिक्षा की अधिकारिणी थीं और इस संबंध में उनकी महत्वाकांक्षाओं पर कोई प्रतिबंध नहीं था। जीवन साथी चुनने का पुत्र तथा पुत्री को समान स्वतंत्रता तथा अवसर प्राप्त था।[21] जहाँ विवाह के बाद पुत्रियों तथा बहनो के परिवार की सदस्य संख्या घटती है वहीं विवाह के बाद आने वाली महिलाओं से वृद्धि होती है।[22] विवाह के बाद पुत्र के जन्म देने वाली स्त्री का घर में स्थान काफी ऊँचा हो जाता है। सामान्यतः कहा जाये तो मुसलमानों के आगमन से पूर्व हिन्दू नारी का स्थान बेहतर था। मध्यकाल में भारतीय नारी की स्थिति में निरन्तर ह्रास के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनेक कारण थे।[23] लड़कियों की पवित्रता तथा प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए कम उम्र में विवाह का नियम हो गया। हिन्दू कानून में उनके लिये असमान अधिकार तथा भेदभाव का विधान किया गया।[24] विवाह, वैवाहिक स्तर, तलाक, वैधव्य तथा उत्तराधिकार के मामले में भेदभाव किया गया।[25]

संयुक्त हिन्दू परिवार में पिता परिवार का मुखिया होता है। जन्म के साथ ही पुत्र को परिवार की सम्पति प्राप्त करने का हक प्राप्त हो जाता है। लड़कियों को ऐसे अधिकार नहीं मिलते। उसे केवल भरण-पोषण का अधिकार है। एक पुत्रहीन विधवा स्त्री को या तो कहीं और विवाह करने तक या फिर मृत्युपर्यन्त पुनः विवाह न करने पर उस परिवार की पारिवारिक सम्पत्ति में हिस्सा मिलता है।[26] सभी सदस्यों की स्वीकृति के बिना पिता सम्पत्ति को किसी को हस्तानान्तरित नहीं कर सकता। स्त्री सम्पत्ति के बिकने से उसकी रक्षा करती है। साधारणतया पिता अपने पुत्रों के प्रबंध के लिये विवश है क्योंकि उत्तराधिकार का नियम है कि जब तक उसे पूरी तरह सम्पत्ति विभाजन का अधिकार नहीं मिल जाता, तब तक वह उस कार्य को नहीं कर सकता।[27] सन् 1950 के दशक में बहुत कम स्त्रियां शिक्षित थी। सन् 1957 ई0 के बाद तो महिला साक्षरता इतनी कम हो गयी कि मुश्किल से सौ में एक स्त्री पढ़-लिख सकती थी।[28]

इसका कारण सामाजिक तथा धार्मिक कुप्रथायें, दुर्भाग्यशाली रीतिरिवाज, अविवेकपूर्ण धार्मिक अनुष्ठान तथा अमानवीय अन्धविश्वास थे। इसके अतिरिक्त हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियाँ जैसे बाल विवाह थोपी गयी। वैधव्य, सती प्रथा एवं देवदासी प्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बच्चियों का वध, बहु पत्नीवाद, जाति प्रथा आदि ने हिन्दू समाज को अप्रगतिशील बना दिया। जिसमें स्त्रियों के लिए कोई स्थान नहीं था। हिन्दू स्त्री की स्थिति निराशाजनक थी।

हिन्दू समाज में व्याप्त अमानवीय क्रूर तथा असभ्यतापूर्ण सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के परिप्रेक्ष्य में हिन्दू नारी की सामान्य स्थिति को जाना जा सकता है। प्रचलित सामाजिक ढाँचे में पुरुषों को अधिक स्वतंत्रता थी। यह प्रथाएँ मध्यकाल की देन थी।[29] प्राचीन काल में एक पुत्री के जन्म लेने पर उसकी पूरी देख रेख होती थी और पुत्र के समान ही उसे भी शिक्षित किया जाता था, लेकिन बाद में कुछ सामाजिक बुराइयों के पैदा हो जाने से शिशु हत्या हिन्दू समाज में प्रचलित हो गयी।[30] अनेक सनातनी परन्तु कट्टर हिन्दू जन्म के तुरन्त बाद अपनी पुत्रियों की हत्या कर देते थे।[31] पुत्र द्वारा ही माता-पिता की अन्तिम क्रिया होती थी। पुत्री अपने माता-पिता पर भार समझी जाती थी। उसके लिये विवाह हेतु वर ढूँढने की लम्बी प्रक्रिया से माता-पिता का दायित्व और बढ़ जाता था। किसी बच्ची की हत्या

करना मानसिक, सामाजिक तौर पर वातावरण का एक अंश हो गया था। यह लोगों के लिये आश्चर्य का विषय नहीं रह गया था। यह सम्पूर्ण हिन्दू जाति में नहीं प्रचलित नहीं थी, हाँ राजपूत और जाट जाति के लिये यह साधारण बात थी। पंजाब में यह प्रत्येक स्थान पर प्रचलित थी।[32] बच्चों की हत्या करने के लिये उसे जहर खिलाया जाता था या दूध में मिलाकर पिलाया जाता था। कभी-कभी तो मां के स्तन में जहर की एक परत प्रयोग में लायी जाती थी, जिससे दूध पीते समय बच्ची की मृत्यु हो जाती थी।[33]

प्रत्यक्षतः इस प्रकार के अमानवीय कृत्यों ने भारत के नये शासन ब्रिटिश अधिकारियों को बहुत आन्दोलित किया। उन्होंने इन कुरीतियों को दूर करने के लिये भारतीय राजाओं से लिखित प्रतिज्ञा पत्र लेना आरम्भ किया। सन् 1870 में ब्रिटिश सरकार ने शिशु हत्या निरोधक एक घोषणा पत्र जारी किया।[34] इस क़ानून के अन्तर्गत माता-पिता के लिये बच्चे के जन्म को चाहे वह पुत्र हो या पुत्री दर्ज कराना आवश्यक कर दिया गया। इस कानून को कड़ाई से लागू किया गया।[35] सामाजिक विस्तार के लिये अनेक हिन्दू समाज सुधारको ने, जिन्होने पश्चिमी भाषा और संस्कृति का अध्ययन किया था, शिशु हत्या का प्रबल विरोध किया। इतना ही नहीं बल्कि हिन्दू समाज का कानून और व्यवस्था असमान होने के कारण उसके विरोध में अधिकाधिक ईसाई धर्म युद्ध शुरू हुआ।[36] हिन्दू सामाजिक व्यवस्था ने महिलाओं की दशा को आगामी कुछ शताब्दियों में और गिराया, जो 19वीं शताब्दी के लगभग अधिक बदतर हालत में पहुंच गया। यह उस समय हुआ जबकि महिलाओं ने पुरूष के अधीनस्थ के रूप में अपने को प्रस्थापित किया। कानून लिंग भेद की समानता और महिला पुरूष के अधिकार को समान स्वीकार नहीं करता था। समाज में सारे अधिकार तथा स्वतंत्रता केवल पुरुषों को प्राप्त थी महिलायें को इससे वंचित रखा गया। पुरुषों तथा महिलाओं के व्यक्तिगत तथा सामाजिक आचरण के निर्णय हेतु भिन्न पैमाने थे।[37]

नारी को अपने अज्ञान, बाल विवाह, कम उम्र में मां बनना, थोपा गया वैधव्य तथा पुरूष के उपर निर्भरता के कारण कष्ट सहना पड़ा, सम्भवतः स्त्रियों की इस सामाजिक अवनति का सबसे ख़राब पहलू उनके भयानक कष्ट तथा सामाजिक स्तर में गिरावट थे। यही कारण था नारी की मुक्ति तथा शिक्षा जैसे विषयों ने हर समाज सुधारक का ध्यान आकर्षित किया। बाल विवाह हिन्दू समाज के नैतिक तथा भौतिक अवनति का मूल कारण था। दुर्भाग्यवश इसे शताब्दियों तक समाज द्वारा अपनाये रखा गया। बराबर के बच्चों में होने वाला यह बाल विवाह कमजोर और दुःखी माता-पिता द्वारा रचा गया था। समाज दबाव डालकर जल्दी विवाह के द्वारा लड़के को पिता और लड़की को माता बनने को मज़बूर करता था, जिसका अपरिपक्व पिता और अपरिपक्व माता के रूप में परिणाम निकलता था। क्योंकि हिन्दुओं में पूरी तरह से परिपक्व पुरुष और स्त्रियों के बीच विवाह बहुत कम था। हिन्दुओं में बढ़ती हुयी विधवाओं की संख्या के लिये बाल विवाह उत्तरदायी था। बचपन में विवाह के कारण बच्चों की मृत्युदर बहुत अधिक थी।[38]

इन अतार्किक प्रथाओं ने इन सभी जनसेवी समाज सुधारकों जैसे-राम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, एम0 जी0 रानाडे, दयानन्द सरस्वती, देवेन्द्र नाथ टैगोर, रामकृष्ण परमहंस, अरविन्द घोष, रवीन्द्रनाथ टैगोर, एन0 के0 गांधी, डी0 के0 कर्वे, पी0 सी0 मजमूदार, लाजपत राय, बंकिम चन्द्र चटर्जी, मालाबारी, एन0जी0 चन्द्रावरकर, एनी बेसेन्ट, विवेकानन्द, वर्षलिंगम, सरोजनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सुचेता कृपलानी, दुर्गाबाई देशमुख, रेणुका राय, सरला देवी, मैडम भीकाजी कामा, मारग्रेट कजिन्स, बालकृष्ण चापेकर तथा मुल्कराज का ध्यान आकर्षित किया।[39] ब्रिटिश शासन के माध्यम से अंग्रेजी शिक्षा आयी। अंग्रेजी पढ़ने वाले भारतीय ने समाज सुधारकों से यह जाना कि भारत पर विदेशियों का शासन था और वे भारतीयों के प्रति ईमानदार नहीं थे। अतः भारत को अवश्य स्वतंत्र होना चाहिए। सन् 1860 तथा 1870 के दशक में राष्ट्रीयता की भावना मजबूत हुई, जिसकी अन्तिम परिणति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में हुई। सन् 1885 ई0 में अपनी स्थापना की तिथि से लेकर सन् 1920 ई0 तक कांग्रेस श्रेष्ठ शिक्षित तथा सम्पन्न लोगों की पार्टी थी। रवीन्द्र नाथ टैगोर की बहन स्वर्णकुमारी कलकत्ता में सन् 1900 ई0 में प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित होने वाली पहली महिला थी।

## संदर्भ सूची


1. बी0 मुकर्जी 'कम्यूनिटी डेवलपमेण्ट एण्ड पंचायतीराज, दी इण्डिया जनरल ऑफ़ पब्लिक एडिमिनिस्टे[a]शन, वाल्यूम 8 नं. 4, अक्टूबर-दिसम्बर, 1962, पृष्ठ- 579-580
2. एस0 के0 डे, पंचायती राज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1962, पृष्ठ- 75
3. बी0 मुकर्जी, वही, पृष्ठ- 587

4. जयप्रकाश नारायण, स्वराज फॉर दी पीपुल, वाराणसी, अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ, 1961, पृष्ठ- 7-8

5. दैनिक आज, वाराणसी संस्करण, 30 जुलाई, 1979, पृष्ठ-4

6. एस0 के0 डे, पंचायती राज, सिन्थेसिस ओरिएण्ड लांगमैन, हैदराबाद 1969

7. रिपोर्ट ऑफ़ द टीम टू स्टडी कम्यूनिटी प्रोजेक्ट एण्ड नेशनल इम्सअेंसन, एशिया, 1957, पृष्ठ-23

8. सी0 वी0 भाम्भरी, पॉलिटिकल पार्टी एण्ड पंचायती राजः सम थ्योरिटिकल कन्सीडरेसन, द्वारा उद्धृत इकबाल नारायण (सम्पादक), पंचायती राज प्लानिंग एण्ड डेमोक्रेसीः सम राइजिंग ईश्यूज, बम्बई, एशिया पब्लिकेशन हाऊस, 1969 पृष्ठ-310

9. जियाउदीन खान, पंचायती राज एण्ड डेमोक्रेसी, द्वारा उद्धृत इकबाल नारायण (सम्पादक), पंचायती राज प्लानिंग एण्ड डेमोक्रेसीः सम राइजिंग ईश्यूज, बम्बई, एशिया पब्लिकेशन हाऊस, 1969 पृष्ठ-262

10. बलवन्त राय मेहता कमेटी रिपोर्ट, 1957

11. एस0 के0 डे, एम0 वी0 माथुर एण्ड इकबाल नारायण, (सम्पादक), पंचायती राज प्लानिंग एण्ड डेमोक्रेसीः सम राइजिंग ईश्यूज, बम्बई, एशिया पब्लिकेशन हाऊस, 1969, पृष्ठ-84

12. रमन कृष्णप्पेश्वरम सुब्रस्वामीनाथन बैकुण्ठाचल्मेश्वरम, ''विल पंचायत्स कम'' कुरूक्षेत्र, बाल्यूम 11 अंक 2, अक्टूबर 1962, पृष्ठ-46-48

13. विमेन इन हिन्दू माइथालॉजी, योजना, भाग 19, अंक 13-14, 15 अगस्त, 1975 पृष्ठ-34-37

14. वाई0 एस0 परमार, पोलीऑड्री इन द हिमालय ताज, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस, 1973, पृष्ठ-33

15. वही, पृष्ठ-33

16. विमेन पावर, द इलस्ट्रेट वीकली ऑफ़ इण्डिया भाग नं0 96, नं0 41, 12 अक्टूबर, 1975, पृष्ठ-8-12

17. वाइ0 एस0 परमार, वहीं, पृष्ठ-34

18. एस0 डोरापर स्वामी, एजूकेशन एडवान्समेण्ट एण्ड सोसीयोइकोनामिक पार्टी सीपेन ऑफ़ वीमेन इन इण्डिया पर्सपेक्टिव प्रॉब्लम्स, इनपेडिमेन्ट्स कनसब्स, न्यू देलही डायरेक्टेरेट ऑफ़ नेशनल एडल्ट एजूकेशन, मिनिस्ट्री ऑफ़ एजूकेशन एण्ड सोशल वेलफेयर, गर्वन्मेन्ट ऑफ़ इण्डिया, 1975, पृष्ठ-1

19. विक्टर एस0 डिसोजा ''फेमिली एटेटस एण्ड फीमेल वर्क पार्टी सीपेशन इम्पीरिकल एनालिसिस ''सोशल एक्शन, भाग 25, अंक 3, जुलाई-सितम्बर, 1975, पृष्ठ-267-76

20. इबिलाइन सल्लेराट, वीमेन सोसाइटी एण्ड चेन्ज 1971 (आंग्ल भाषा में अनुवाद) के0 मार्गरेट स्कॉटफोर्ड, पृष्ठ-75

21. लाजपत राय, अनहैप्पी इण्डिया, कलकत्ता, 1923, पृष्ठ- 70, 80

22. सुजाता मनोहर, ''रीड्स टू वीमेन्स इक्वालिटी'' जर्नल ऑफ़ फीमेल वेलफेयर, वाल्यूम 22 नं0 2 दिसम्बर, 1975, पृ0 32-37, मेहरा मसानी, ''इण्डियन बीमेन सेकेन्ड क्लास सिटिजेन्स, द इलस्टे$^{a}$टेड वीकली ऑफ़ इण्डिया, वाल्यूम 96, अंक 9, 2 मार्च 1975, पृष्ठ- 4-13

23. अनंत सदाशिव अल्तेकर, द पोजीशन ऑफ़ वीमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन बनारसः मोतीलाल बनारसी, दास पब्लिशर्स, 1965, पृष्ठ- 61

24. अन्नू मेनन मजूमदार ''सोशल वेल्फेयर इन इण्डिया'' बाम्बे, एशिया, 1964, पृष्ठ 87-120

25. इस्लामिक कानून के अन्तर्गत स्वामी के निधन के बाद सम्पत्ति पर उन विभिन्न हिस्सेदारों (स्त्री और पुरूष) जो वास्तव में अपने भाग के अधिकारी है उनके बीच विभाजित हो जाता है। विवाह के बावजूद स्त्री अपना अधिकार नहीं खोती ऐसा हिन्दुओं के संबंध में नहीं है। तारा अलीवेग, विमन ऑफ़ इण्डिया नई दिल्ली पब्लिकेशन डिविजन, गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया 1958, पृष्ठ-21

26. रूप एल0 चौधरी, हिन्दू विमन्स राइट टू प्रॉपर्टी पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट, कलकत्ता, 1961, पृष्ठ- 20

27. एल0 एस0 एस0 ओ मैली, इण्डियाज हेरिटेज, नई दिल्ली, 1976, पृष्ठ 129, माग्रेट कोटमेक, द हिन्दू विम, बाम्बेः एशिया, 1963, पृष्ठ- 67-69

28. अनंत सदाशिव अल्तेकर, वही पृष्ठ- 67

29. मुस्लिम शासन के अन्तर्गत भारतीय महिलाओं की बदलती हुयी स्थिति का तुलानात्मक अध्ययन है रेखा मिश्रा, विमेन इन मुगल इण्डिया, 1526-1748, ए0डी0 दिल्ली मुन्सीराम मनोहरलाल, 1967, पृष्ठ-1

30. पुरूषोत्तम नागर, लाला लाजपत राय द मैन एण्ड हिज आइडियाज, नई दिल्ली, मनोहर, 1977, पृष्ठ-1। लाजपत राय, द आर्यसमाज, लन्दन लांगमैन्स, ग्रीन एण्ड कम्पनी, 1951 पृष्ट 5 मेरी फ्रासिन्सस विलिंग्टन, बुमन इन इण्डिया, न्यू दिल्ली अमेरीकी बुक एजेन्सी, 1973, पृष्ठ 26-27

31. अनंत सदाशिव अल्तेकर, वही पृष्ठ- 70

32. मनमोहन कौर, रोल ऑफ़ विमन इन द फ्रीडम मूवमेन्ट, 1857-1947, स्टरलिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1968, पृष्ठ- 3-6

33. डनजील चाल्स, इन्टैंशन्स ऑफ़ पंजाब कास्टस, लाइका पब्लिशर्स, लाहौर, 1974, पृष्ठ- 252

34. एच0 एच0 हाइमैन, द अवेकनिंग ऑफ़ एशिया, लन्दन, 1919, पृष्ठ-1

35. मनमोहन कौर वही पृष्ठ-67

36. के0 के0 गंगाधर, इण्डियन नेशनल कान्सससनेसः ग्रोथ एण्ड डेवलपमेंट, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ-72

37. वही, पृष्ठ-165-66

38. देवेन्द्र कुमार चौधरी, आर्य समाज इन पंजाब 1977-1901, अप्रकाशित एम0, लघु शोध प्रबन्ध, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1979, पृष्ठ-121-22

39. बी.बी. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ़ सोशल एण्ड पॉलिटिकल आइडियाजः फ्रॉम राममोहन राय टू दयानन्द कलकत्ता, 1967

**Corresponding Author**

**Amit Kumar***

Research Student, Department of History, Km. Mayawati Government Girls P.G. College, Badalpur, Uttar Pradesh